Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2019 GISRRJ | Volume 2 | Issue 4 | ISSN : 2582-0095

सन् साठ के बाद के हिन्दी उपन्यासों का सर्वेक्षण एवं वर्गीकरण

डॉ0 विजय कुमार शुक्ला
एम.ए.,पीएच.डी. (हिन्दी)
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार)

प्रेमचन्द्र के बाद हिन्दी उपन्यास अनेक धाराओं में विकसित हुआ। ये धाराएँ सबल भी थी और वैविध्यपूर्ण भी। उपन्यास का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ और उसके कथ्य को अधिक जीवन्तता मिली। यह वह दौर है जब हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र में नये हस्ताक्षर उभरने लगे थे और पुराने उपन्यासकारों ने पाठकों को आकर्षित किया। शैलेश मटियानी का पहला उपन्यास 'बोरीबली से बोरी बन्दर तक' 1959 में प्रकाशित हुआ। श्रीलाल शुक्ल का पहला उपन्यास 'सूनी घाटी का सूरज' 1957 में छपा। कृष्ण बददेव वैद भी 1957 में ही 'उसका बचपन' के साथ उपन्यास के क्षेत्र में उपस्थित हुए। कमलेश्वर का पहला उपन्यास 'उसका बचपन' के साथ उपन्यास के क्षेत्र में उपस्थित हुए। कमलेश्वर का पहला उपन्यास 'एक सड़क सत्तावन गलियाँ' 1957 में ही प्रकाशित हुआ। मोहन राकेश, राजेन्द्र अवस्थी, रामदरश मिश्र, निर्मल वर्मा, उषा प्रियम्वदा, राही मासूम रजा, भीष्म सहनी, शिवप्रसाद सिंह, काशीनाथ सिंह वस्तुतः 1960 के बाद ही हिन्दी पाठकों में परिचित हुए। राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोवती, राजकमल चौधरी, हजारी प्रसाद द्विवेदी जैसे कथाकार सन् साठ के बाद ही स्थापित हुए। हिन्दी उपन्यासों में विमर्श के नये क्षितिज को लेकर भैरव प्रसाद गुप्त, अमृतराय, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' जैसे उपन्यासकार इस कालखंड में अपने विशिष्ट प्रयोग और जनपक्षधरता के कारण महत्वपूर्ण हुए। भीमसेन त्यागी, महीप सिंह, धमेन्द्र गुप्त, वीरेन्द्र कुमार जैन, सुरेन्द्र वर्मा, द्रोणवीर कोहली, रमेशचन्द्र साह, रवीन्द्र वर्मा, मंजुल भगत, योगेश गुप्त, मंजूर एहतेशाम, कामतानाथ, मृदुला गर्ग, नरेन्द्र कोहली, ममता कालिया, शिवानी, अमरकान्त, हृदयेश अभिमन्यु अनतः मेहरूनिशा परवेज, गोविन्द मिश्र, शशिप्रभा शास्त्री, विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, विवेकीराय, गिरिराज किशोर। अस्सी के पहले के चर्चित उपन्यासकार हैं। अस्सी के बाद उपन्यास के कथानक और शिल्प में परिवर्तन आता है। इस संदर्भ में डॉ0 सूरज पालीवाल ने सच ही कहा है–''बीसवीं शताब्दी के अंतिम दो दशकों में प्रकाशित उपन्यासों ने जिन विषयों

को शिद्धत के साथ उठाया है, उससे उनकी क्षमता का पता चलता है। यह मात्र संयोग नहीं है कि उपन्यासकारों ने इतिहास के किसी कालखण्ड या इतिहास की किसी ऐसी घटना को जिनके सूत्रों ने पूरे इतिहास को ही बदल दिया हो, पर अपनी संवेदनशील नजर से उपन्यास लिखे, राजनीति के क्षरण के बीच से निकल रही चिन्ताधारा को उपन्यासकारों ने सकारात्मक दृष्टि उभारा है, स्त्री–पुरूष सम्बन्धों को नये नजरिये से देखा–परखा है। अपने इतिहास पुरूषों को उनके सम्पूर्ण कार्यकलापों और तत्कालीन राजनीतिक घटनाओं के साथ भारतीय जनमानस की आवश्यकताओं की कसौटी पर परखा तथा यह भी देखा है कि हमारे पूर्वजों ने कहाँ ऐसी गलती की है, जिसका परिणाम हम आजतक भोग रहे हैं। यह केवल संयोग मात्र नहीं है कि उपन्यासकारों ने भारी–भरकम विषयों के साथ बहुत ही छोटे लेकिन बहुत प्रभावशाली विषयों को अपने उपन्यासों में लिया है और घटनाओं के साथ उनके घटित होने की स्थितियों की अधिक पड़ताल की है। संयोग मात्र कहकर हम इतिहास की धारा को ही उलट देना चाहते हैं। समाज में जब भी परिवर्तनों की धारा तेज गति से बहती है तब साहित्य उन्हें व्यक्त करने के लिए अपने में अपूर्व परिवर्तन करता है। साहित्यकारों के समक्ष वह चुनौती का समय होता है। हिन्दी के उपन्यासकारों ने इस परिवर्तन की चुनौती को स्वीकार किया और अपने उपन्यासों में उसे व्यक्त करने का कौशल दिखाया। जिस प्रकार 1950 के बाद उपन्यासों की भाषा, शिल्प और विषय बदले, उसी प्रकार 1980 के बाद के उपन्यासों में यह परिवर्तन दिखाई देता है। सन् 50 के पहले के उपन्यासों और 50 के बाद के उपन्यासों को एकसाथ पढ़कर इस अंतर को देखा जा सकता है। स्वाधीन भारत के खुले उजास में जो उपन्यास लिखे गये उनमें नये बनते–बिगड़ते सम्बन्धों की अकुलाहट स्पष्ट दिखाई देती है। 1980 के बाद के उपन्यासों में भी वही अकुलाहट नये सम्बन्धों के टूटने–बनने, स्त्री तथा दलितों के उभार एवं विश्व बाजार की चुनौतियों के संदर्भ में देखी जा सकती है।''

समकालीन हिन्दी उपन्यासों की एक विशेषता है स्त्री विमर्श। इस संदर्भ में डॉ0 वीरेन्द्र यादव ने सच ही लिखा है–''यह सुखद् संयोग है कि विश्वकथा साहित्य की तर्ज पर नारी चेतना के सशक्त तेवरों की अनुगूँज इधर के हिन्दी उपन्यासों में अत्यंत प्रभावी ढ़ंग से हुई है। ये उपन्यास पितृ–सत्तात्मक भारतीय समाज में नारी की उस अभिशप्त नियति को रेखांकित करते हैं, जिसका दायरा दैहिक, भावनात्मक एवं आर्थिक शोषण तक विस्तृत है। इस संदर्भ में कृष्णा सोवती मैत्रेयी पुष्पा, चित्रामुद्गल प्रभा खेतान, नासिरा शर्मा व गीतांजलि श्री की औपन्यासिक कृतियाँ विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। अपने उपन्यासों के माध्यम से इन लेखिकाओं ने जहाँ 'नारीवादी' लेखन की सार्थकता को रेखांकित किया है वहीं पुरूष लेखन की उस सीमा को भी उजागर किया है, जो अपने सारे नेक इरादों के बावजूद पुरूष दृष्टि से उबर नहीं पाते।

समकालीन ऐतिहासिक उपन्यासों पर उनकी टिप्पणी है–''इतिहास का उपन्यास के साथ गहरा रिश्ता रहा है, और सच तो यह है कि सही ऐतिहासिक

अंतर्दृष्टि के बिना सार्थक उपन्यास नहीं लिखे जा सकते। लेकिन जब इतिहास ही उपन्यास की कथा–वस्तु हो तो यह चुनौती और भी बढ़ जाती है। कमलाकान्त त्रिपाठी ने अपने उपन्यासों 'पाट्टीधर' और 'बेदखल' में अठारह सौ सत्तावन और उसके बाद के कालखंड को इतिहास की जिस जन–पक्षधर समझ के साथ प्रस्तुत किया है, वह इधर के उपन्यासों में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'पट्टीधर' और 'बेदखल' की विशिष्टता के मूल में इनकी इतिहास गाथा उतनी महत्वपूर्ण नहीं है, जितनी इतिहास दृष्टि। अठारह सौ सत्तावन के विप्लव एवं अवध के किसान आंदोलन में बाबा रामचन्द्र की नेतृत्वकारी भूमिका को जिस जनपक्षधर समझ के साथ ये उपन्यास प्रस्तुत करते हैं। वह इतिहास और समाजशास्त्र की क्षतिपूर्ति सरीखा है। इतिहास के इस कालखंड को प्रभुत्वकारी विमर्श के बाद निकालकर सतह से शिखर देखने की जो इतिहास दृष्टि से कमलाकान्त त्रिपाठी अपनाते हैं उसी के परिणामस्वरूप 'पट्टीधर' 1857 की 'जनक्रांति' या 'भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम' की अवधारणा को प्रश्नों के घेरे में खड़ा करता है। इसी इतिहास दृष्टि के चलते स्वतंत्रता आंदोलन की मुख्यधारा से 'बेदखल' अवध के किसान आंदोलन (1919–1922) को पहली बार औपन्यासिक केन्द्रीयता प्राप्त होती है।

यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि 'पट्टीधर' और 'बेदखल' दोनों ही उपन्यास इतिहास कथा होने के साथ–साथ ग्रामकथा भी है। कर्ज, मालगुजारी, नजराना और बेदखली से त्रस्त अवध के जयकरन और सूचित सरीखे किसानों की दुर्दशा की पृष्ठभूमि में 'पट्टीधर' का 1857 का विद्रोह एवं 'बेदखल' का बाबा रामचन्द्र के नेतृत्व में किसान आंदोलन महज इतिहास की थिगाली न होकर इन उपन्यासों को केन्द्रीय अन्तर्वस्तु है। यहाँ यह विडम्बना द्रष्टव्य है कि 'पट्टीधर' में 1857 के विप्लव के दौरान तालुकेदारों, जमींदारों व माजगुजारों का जो कुलीन संवर्ग अपने हितों की रक्षा के लिए निर्धन किसानों को अंग्रेजों के विरूद्ध लड़ाई में कच्चेमाल की तरह इस्तेमाल कर रहा था, वही कुलीन वर्ग 'बेदखल' में अंग्रेजों के साथ गठजोड़ करके किसान रियाया पर भूमि बेदखली का कहर ढा रहा था।

मंजूर एहतेशाम ने भारत में सबसे बड़े अल्पसंख्यक समुदाय की पीड़ा अन्तर्द्वन्द्व व दुर्बलताओं को भारतीय उपमहाद्वीप के राजनीति परिदृश्य के साथ जिस तरह अंतर्गुम्फित किया है, वह गहरी रचनात्मक आत्मसंलग्नता के बिना संभव नहीं पात्रों व परिवेश की जीवन्त आत्मीयता प्रदान करती उपन्यास की हिन्दी–उर्दू मिश्रित भाषा इसे अत्यंत पठनीय बनाती है। 'सूखा बरगद' में पठनीयता व औपन्यासिक दृष्टि का यह दुर्लभ सुयोग एक उल्लेखनीय उपलब्धि है।

आज उपन्यास बहुआयामी हो गया है। ऐतिहासिक, आंचलिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक प्रकृतिवादी उपन्यासों ने आज नवीन रूप ग्रहण किया है। सन् साठ के बाद हिन्दी उपन्यासों की राजनीति चेतना अधिक प्रखर हुई है। काशीनाथ

सिंह का 'अपना मोर्चा' छात्र राजनीति पर पहला उपन्यास है। यह 1972 ई0 में प्रकाशित हुआ। 'गली आगे मुड़ती है' (शिवप्रसाद सिंह) में भी छात्र राजनीति की पूरी झलक है। 'रागदरबारी' महाभोज जैसे उपन्यास राजनीतिक उपन्यास के प्रतिमान हैं।

संदर्भ :

1. समकालीन हिन्दी उपन्यास–डॉ0 सूरज पालीवाल भूमिका से।
2. आधुनिक हिन्दी उपन्यास–सं. डॉ0 नामवर सिंह, पृ. 19–20.
3. उपरिवत्, पृ. 26–27.
4. हीरक जयंती–नागर्जुन, पृ. 50.
5. वही पृष्ठ.